प्रवचन-६९, श्लोक-९२-९४, गाथा-६८-६९, शुक्रवार, अषाढ़ कृष्ण १ (गुजराती), दिनांक ०९-०७-१९७१

आज भगवान महावीरस्वामी का दिव्यध्वनि का दिन है। भगवान महावीर परमात्मा को वैशाख शुक्ल दसवीं को चार ज्ञान का नाश होकर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था, तब वाणी नहीं निकली, क्योंकि उनकी वाणी हो और धर्म प्राप्त करनेवाले न हों, ऐसा नहीं होता क्योंकि जब तीर्थंकरगोत्र बाँधा, बँधा, तब भाव में ऐसा था कि मैं पूर्ण होऊँ अथवा जीव धर्म प्राप्त करे। इसलिए तीर्थंकर की वाणी निकलती है, तब धर्म प्राप्त करनेवाले होते ही हैं, ऐसा ही उसका सम्बन्ध है। वैशाख शुक्ल दसवीं को धर्म प्राप्त करनेवाले गणधर जो मुख्य चाहिए, वे नहीं थे। इसलिए ६६ दिन तक वाणी नहीं निकली। उस वाणी को निकलने का काल नहीं था। उसमें आज श्रावण कृष्ण एकम... सिद्धान्त की श्रावण कृष्ण एकम आज है। तब इन्द्र, गणधर को-गौतम को लाये। लाये और यहाँ वाणी खिरी। इसलिए (वे) आये, इसलिए वाणी निकली, यह निमित्त है। वाणी उस समय निकलने का काल था। यह सिद्धान्त चला है। इन्द्र पहले गौतम को क्यों नहीं लाये? कि भाई! काललब्धि नहीं थी। उनका समझने का काल नहीं था और यहाँ वाणी निकलने का। वह

वाणी आज श्रावण कृष्ण एकम को भगवान के मुख से दिव्यध्वनि निकली। उस वाणी के-सिद्धान्त के अर्थ के करनेवाले भगवान महावीर, वह द्रव्य-वस्तु हुआ, क्षेत्र विपुलाचल पर्वत। राजगृहीनगरी के निकट पाँच पर्वत हैं, उनमें एक विपुलाचल पर्वत है, उस क्षेत्र में भगवान की वाणी निकली। काल, यह श्रावण कृष्ण एकम था, वह काल है। श्रावण कृष्ण एकम को दिव्यध्वनि खिरी। प्रभु ने भावश्रुतज्ञान की प्ररूपणा की। हैं तो केवलज्ञानी, परन्तु भावश्रुत की प्ररूपणा की, क्योंकि जो गणधर भावश्रुत को प्राप्त करनेवाले, उन्हें निमित्त तो भावश्रुत हो, ऐसा। उस भावश्रुत की प्ररूपणा परमात्मा ने की है। आज श्रावण कृष्ण एकम (को की है।) अर्थ के करनेवाले भगवान और पश्चात् सूत्र की रचना के करनेवाले गणधर। इस सूत्र की रचना अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग की रचना की, वह भी आज का दिन है। यह आज वाणी का—दिव्यध्वनि का दिन है। श्रावण कृष्ण एकम। सिद्धान्त से यह श्रावण कृष्ण एकम है। सिद्धान्त के हिसाब से कृष्ण (पक्ष) पहले आता है। शुक्ल पक्ष बाद में क्योंकि यह पूर्णिमा कल गयी न? पूर्णिता अर्थात् पूर्ण महीना। पूनम अर्थात् पूरा महीना कल पूरा हुआ। और यह कृष्ण (पक्ष) लगा। महीने का पहला दिन। अमावस्या हो, तब आधा महीना होता है। अ-मास है न? आधा महीना होता है। पूर्णिमा हो, तब पूर्ण मास होता है। अर्थात् युग का पहला दिन श्रावण कृष्ण एकम। उस दिन भगवान की दिव्यध्वनि निकली और गणधर भगवान ने रचना की। भावश्रुत के परिणमन से, गणधरदेव ने भावश्रुत से परिणम कर द्रव्यश्रुत की रचना की है। समझ में आया?

भगवान की वाणी में भावश्रुत का अर्थ आया। गणधर भावश्रुत को परिणमित हुए, उन्होंने द्रव्यश्रुत की रचना की। अर्थ के कर्ता भगवान हैं; सूत्र के कर्ता गणधरदेव हैं, यह उस दिव्यध्वनि का दिन है। उस समय होंगे, तब तो गणधर, इन्द्र, विपुलाचल पर्वत पर साक्षात् दिव्यध्वनि (जो) ६६ दिन से बन्द थी। भगवान को केवलज्ञान हुआ तो भी, गणधर मुख्य है, वे नहीं थे; इसलिए वाणी नहीं निकली, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। वे लोग कहते हैं-नहीं, देखो! गणधर नहीं थे, इसलिए वाणी नहीं निकली। गणधर का निमित्त हुआ, इसलिए वाणी निकली। ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? वाणी तो वाणी के काल में ही निकली है, गणधर का निमित्त था।

यह भगवान के कहे हुए सिद्धान्त, उन्हें सन्तों ने शास्त्र रचना की। उसमें से यह

एक नियमसार सिद्धान्त है। यह नियमसार है न ? नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। नियम का अर्थ ही मोक्ष का मार्ग होता है। आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वभाव का अन्तर अनुभव में सम्यग्दर्शन प्रगट करके ज्ञान और स्वरूप की रमणता प्रगट की, ऐसा जो मोक्षमार्ग है, उसके फलरूप मोक्ष है। यह मार्ग और मार्ग के फल दोनों की व्याख्या इसमें है। पहले गाथा में आ गयी है। कल सज्झाय थी। मार्ग और मार्ग के फल में....

श्लोक-९२

और इस ६७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

(मन्दाक्रान्ता)

त्यक्त्वा वाचं भवभयकरीं भव्यजीवः समस्तां,
ध्यात्वा शुद्धं सहजविलसच्चिच्चमत्कारमेकम्।
पश्चान्मुक्तिं सहज-महिमानन्द-सौख्याकरीं तां,
प्राप्नोत्युच्चैः प्रहत-दुरितध्वान्तसङ्घातरूपः ।।९२।।

(वीरछन्द)

भव्यजीव भवभय उत्पादक सब वचनों का त्याग करें।
सहज शुद्ध विलसित चैतन्य चमत्कार का ध्यान करें॥
पाप तिमिर का पुञ्ज नाश कर अहो सहज जो महिमावन्त।
सौख्य और आनन्द खान है मुक्ति लहें अतिशय भगवन्त॥ ९२॥

[श्लोकार्थः—] भव्यजीव, भवभय की करनेवाली समस्त वाणी को छोड़कर शुद्ध सहज —विलसते चैतन्य चमत्कार का एक का ध्यान करके, फिर, पापरूपी तिमिरसमूह को नष्ट करके सहजमहिमावन्त आनन्दसौख्य की खानरूप ऐसी उस मुक्ति को अतिशयरूप से प्राप्त करता है।

श्लोक-९२ पर प्रवचन

और इस ६७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं - ९२ वाँ श्लोक, नियमसार।

त्यक्त्वा वाचं भवभयकरीं भव्यजीवः समस्तां,
ध्यात्वा शुद्धं सहजविलसच्चिच्चमत्कारमेकम्।
पश्चान्मुक्तिं सहज-महिमानन्द-सौख्याकरीं तां,
प्राप्नोत्युच्चैः प्रहत-दुरितध्वान्तसङ्घातरूपः ।।९२।।

यह ६७ वीं गाथा। वचनगुप्ति की बात चलती है। लो, भगवान ने वाणी कही, अब उसमें ऐसा आया कि वचनगुप्ति किसे कहना? समझ में आया? कहते हैं, श्लोकार्थ है न?

श्लोकार्थ : भव्यजीव,... पहली ही बात ली है। पात्र जीव जो है वह। आत्मा की शान्ति मोक्ष के मार्ग को पाने के योग्य है। **भव्यजीव, भवभय की करनेवाली समस्त वाणी...** लो। वाणी है, वह तो जड़ है, परन्तु उसमें बोलने का विकल्प है, वह भवभय को करनेवाली विकल्प दशा है। वाणी तो जड़ है। भाषा तो ऐसी है, देखो! **भव्यजीव, भवभय की करनेवाली समस्त वाणी को छोड़कर...** इसका अर्थ कि विकल्प को छोड़कर। वाणी बोलने में जो विकल्प / राग है, उसे छोड़कर, ऐसा इसका अर्थ है। यह संस्कृत प्रमाण तो ऐसा अर्थ नहीं होता। वाणी को छोड़कर, ऐसा लिख है। लो, वाणी क्या छोड़े? वाणी करता कब है, वह वाणी छोड़े? वह तो जड़ है परन्तु वाणी बोलने का जो भाव है, वह राग है। आहाहा! छद्मस्थ को, हों! केवली को कुछ है नहीं। राग नहीं है। वह तो इच्छा बिना भगवान की दिव्यध्वनि वाणी निकलती है परन्तु छद्मस्थ हैं, रागी हैं, इसलिए वाणी के योग में राग का परिणाम निमित्त है।

उस परिणाम को छोड़कर। देखो! यह व्याख्यान करने की वाणी में भी शुभराग है, कहते हैं। आहाहा! छद्मस्थ को। उसे वाणी की गुप्ति की बात है न। वह **भवभय की करनेवाली समस्त वाणी को छोड़कर...** शुभराग। वाणी में जो अशुभराग वह तो ठीक, परन्तु धर्म की वाणी में जो कहने में राग है... आहाहा! उसे भी छोड़कर। **शुद्ध सहज—विलसते चैतन्य चमत्कार का एक का ध्यान करके,...** यह वाणी का विकल्प है, उसे

छोड़कर, स्वाभाविक शुद्ध सहज विलसते। भगवान आत्मा स्वभाविक विलसता-खिलता प्रभु चैतन्य अन्दर है। ऐसा चैतन्य चमत्कार। भगवान आत्मा में चैतन्य चमत्कार भरा हुआ है। ऐसा चैतन्य चमत्कार आत्मा का तत्त्व **एक का ध्यान...** उसका एक का ध्यान। आहाहा!

वाणी के राग को छोड़कर। वह राग तो भवभय का करनेवाला है, कहते हैं। आहाहा! रचना तो देखो! उपदेश में शुभराग, वह भवभय का कारण है। आहाहा! मुनि का। वे कहे, उपदेश देने में निर्जरा है। कितना अन्तर! उपदेश से दूसरे धर्म प्राप्त करें, उसका जीव को लाभ होगा। यहाँ कहते हैं, वह सब बात मिथ्या है। छद्मस्थ की उपदेश की वाणी है, उसमें राग आता है। उस राग को छोड़कर वीतराग सहज विलसता प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा, चैतन्य चमत्कार मूर्ति प्रभु स्वयं है, उसका एक का ध्यान करके। देखो! उस आत्मा का एक का ध्यान। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय भेद या भगवान का ध्यान, वह नहीं। भगवान का ध्यान करने जाए तो विकल्प, राग उठता है क्योंकि भगवान परवस्तु है। आहाहा! समझ में आया?

एक भगवान वापस। एक शब्द क्यों प्रयोग किया है? कि यह वस्तु आत्मा है, इसमें अनन्त गुण है और दशा है, ऐसे भेद नहीं हैं। अकेला चैतन्यबिम्ब प्रभु एक का ध्यान करके। यह मोक्ष का मार्ग है। यह नियमसार है न? अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द। इन्द्रियों में कल्पित आनन्द, वह तो दुःख है। इन्द्रियों के विषयों में कल्पित सुख, वह तो दुःख है, जहर है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अमृत का रस है। आहाहा! ऐसा आत्मा, उसका एक का ध्यान करना। उसी ध्यान को यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहते हैं।

चैतन्य चमत्कार का एक का... यह द्रव्य हुआ, वस्तु। **ध्यान करके,...** यह पर्याय हुई। समझ में आया? जिसे आत्मा का हित करना हो और इन चार गतियों के दुःख मिटाने हों, उसे क्या करना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा स्वाभाविक विलसता... आहाहा! चैतन्य चमत्कार प्रभु आत्मा है। उसका वह एक स्वरूप है, एकरूप है, उसका ध्यान करके... आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी उसे ध्येय बनाकर, ज्ञान में भी उसे ध्येय बनाकर, चारित्र में भी उसे विषय बनाकर... आहाहा! वीतराग का मार्ग ऐसा है। दिव्यध्वनि में यह आया था। विपुलाचल पर्वत पर भगवान की वाणी इन्द्र, गणधरों के समक्ष वाणी खिरी, वह यह निकली। आहाहा!

भगवान! तेरा स्वरूप सहज चैतन्य चमत्कार, ऐसी चीज़ तू अन्दर है। उसका ध्यान कर, उसे ध्येय बना, उसे विषय बना। राग और पर का विषय लक्ष्य में से छोड़ दे। आहाहा! चैतन्य भगवान आत्मा, अकेला अमृत के, शान्ति के रस से भरपूर समुद्र है। आहाहा! उसे पामररूप से लोगों ने माना है। मृग की नाभि में कस्तूरी, मृग को उसकी कीमत नहीं। इसी प्रकार परमात्मा कहते हैं कि तेरे स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द की कस्तूरी पड़ी है। आहाहा! उसे न मानकर बाहर खोजता है। कुछ विषयों में सुख है, पैसे में सुख है, इज्जत में (सुख है)... जहर है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु जँचे कैसे? यह लहर है। ऐई! धीरुभाई! लड्डू खाते हों, पैसा कुछ पचास हजार पैदा होता हो। कल कोई कहता था कि पचास हजार कमाते हैं। कोई कहता था। मुझे तो पैसा बहुत बढ़ गया। दु:ख का निमित्त। यह कोई कल कहता था। बारह महीने में पचास हजार कमाते हैं। यह कोई कहता था। बहुत लोग आते हैं। लाख, दो लाख, दस लाख कमाते हैं, परन्तु उसमें क्या हुआ। धूल, वह तो जड़ है। वह तो मिट्टी-धूल है। धूल में सुख है? उस पर लक्ष्य जाता है, वह राग और आकुलता है। आहाहा! धीरुभाई! मार्ग गजब।

यहाँ तो कहते हैं, तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा साक्षात् समवसरण में विराजते हों और उनका लक्ष्य करे और ध्यान करने जाए तो राग है क्योंकि परद्रव्य पर लक्ष्य जाए, वहाँ राग ही होता है। आहाहा! आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, चैतन्यमूर्ति प्रभु अन्दर है। उसका ध्यान करने से शान्ति और आनन्द होता है, उसे धर्म होता है। परद्रव्य के लक्ष्य से और ध्यान से धर्म नहीं होता। आहाहा!

उसका **ध्यान करके, फिर,...** उसे क्या फल आता है, ऐसा कहते हैं। दोनों लेते हैं। मार्ग और मार्ग का फल। **पापरूपी तिमिरसमूह को नष्ट करके...** पाप शब्द से पुण्य और पाप के दोनों भावों को यहाँ पाप कहा है। कहो, समझ में आया? भगवान अन्दर अमृतस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द से डोलता नाथ, प्रभु अन्दर है। आहाहा! अरे! कहते हैं कि उसे पकड़ न, उसे ध्यान में ले न, उसका ध्यान रख न, उसका ध्यान रख न, उसका ध्यान रख न। आहाहा! तो तुझे शान्ति होगी और उसके फलरूप से पुण्य और पाप का अन्धकार... भाषा देखो! पुण्य और पाप के भाव, वह तो अज्ञान अन्धकार है। वह चैतन्य चमत्कार नहीं, ऐसा सामने डालना है न? यहाँ चैतन्य चमत्कार—भगवान आत्मा चैतन्य

चमत्कार का नूर, उसका पूर आत्मा है। आहाहा! और पुण्य तथा पाप तिमिर है, अज्ञान अन्धकार है। भाव में, हों! फल की बात, धूल की बात नहीं है। आहाहा! यह तो शुभ और अशुभभाव, वाणी को छोड़कर... राग, वह तो पाप है, कहते हैं, अन्धकार है। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्य के प्रकाश के चमत्कार का नूर, उसका ध्यान करने से, उसका आश्रय करने से, उसे अवलम्बन में लेने से जो दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी दशा होती है, वह पुण्य-पाप के अन्धकार का नाश करनेवाली है। कहो, समझ में आया? **पापरूपी तिमिरसमूह को...** आहाहा! असंख्य प्रकार के पुण्य-पाप के विकल्प; यहाँ तो वाणी बोलने में राग (होता है), वह अन्धकार है, कहते हैं। विकल्प है न? वह तिमिर है। अन्धकार के समूह को **नष्ट करके...** आहाहा! एक-एक बोल समझने में अभी विवाद। धर्म तो बाद में परन्तु अभी क्या कहते हैं और कैसा है, यह समझने का ठिकाना नहीं होता और धर्म हो गया। जिन्दगी ऐसी की ऐसी चली जाती है। आहाहा!

अरे! **सहजमहिमावंत...** आनन्दसुख की खानरूप ऐसी मुक्ति। यह मुक्ति का विशेष है। पहले **सहज-विलसते चैतन्य चमत्कार...** द्रव्य का विशेषण था। उसका ध्यान, वह पर्याय। अब मुक्ति होती है, वह भी पर्याय है। ऐसे अन्तरस्वरूप को ध्यान में लेने से, उसके फल में सहज महिमावन्त मुक्ति सहज महिमा है। सिद्धपद **सहजमहिमावंत आनन्दसौख्य की खानरूप...** भाषा देखो! आनन्दरूप सुख। आहाहा! आनन्द की-सुख की खान है। कौन? मुक्ति, हों! आहाहा! ऐसे तो लोगस्स में शोर मचाते रहते हैं, 'सिद्धा सिद्धिं मम दिशंतु' ऐई! लोगस्स में आता है या नहीं? लोगस्स के अर्थ कुछ समझे नहीं। तूमड़ी में कंकड़। पहाड़े बोले जाएँ। पहले लोगस्स-बोगस्स किया था या नहीं? किया होगा। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिशंतु' हे सिद्ध भगवान! हमें सिद्धपद दिखाओ। दिखाओं का अर्थ हमें केवलज्ञान होओ, ऐसी प्रार्थना करता है। आहाहा! सामायिक में सात पाठ आते हैं, नहीं? १. णमो अरिहंताणं, २. तिख्खुत्तो, ३. इच्छामि पडिक्कमणुं, ४. तस्स उत्तरी, ५. लोगस्स, ६. करेमि भन्ते, ७. णमोत्थुणं सात पाठ। अर्थ की कुछ खबर नहीं होती। अभी अर्थ की खबर नहीं होती, उसे भाव का भासन होना, अन्तर में आत्मा (कैसे) भासित हो? बस, सात बार बोले तो सामायिक हो गयी। हम भी पहले वहाँ ऐसा सब करते थे। पालेज में पर्यूषण आवे तो फिर शाम को इकट्ठे होकर प्रतिक्रमण करें। पूरे दिन दुकान चले। अपवास किया हो, चतुर्विध आहारत्यागवाला अपवास हो तो भी दुकान में बैठें।

शाम को सब इकट्ठे होकर प्रतिक्रमण करें। एक-दो गायन गायें। हो गया धर्म, लो! धूल में भी नहीं होता था।

गाते थे 'देखो रे... देखो रे... जैनों कैसे व्रत धारी...' ऐसा आता है न? जम्बूस्वामी। ऐसा गाते। सब कण्ठस्थ किये हुए थे। सब बैठे हों वहाँ गाते। नहीं खबर... हमारे सब सुननेवाले आवे। फावाभाई और धीरुभाई ये थे न? धीरजलाल, मनहर का पिता। सब भोले-भट्ट जैसे। आहाहा! फिर वह सत्यनारायण की कथा बैठावे।

मुमुक्षु : आत्मा सत्यनारायण है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सत्यनारायण तो यह है। वह तो सत्यनारायण, वह ब्राह्मण करे और फिर उसकी प्रसादी नहीं ली, उसका जहाज डूब गया, अमुक हुआ, ऐसी बातें आती हैं। आती हैं या नहीं? अन्तिम वह प्रसादी... इसलिए तब तक उसे बैठना, ऐसा। इसलिए ब्राह्मण ने ऐसी रचना कर रखी है। चला नहीं जाए ऐसा। जिसने प्रसादी नहीं ली, उसका जहाज डूब गया, ऐसा हुआ। इसलिए तब तक सुनने बैठना। वह चाहे जैसा गप्प मारे। हमने यह सब वहाँ सुना है, हों! किया नहीं परन्तु सुना है। आहाहा! जैन में नाम धरावे तो भी उसे कोई भान नहीं होता।

कहते हैं, आहाहा! जिसने आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, परमात्मा जिसका अन्तरस्वरूप है, उसे जिसने ध्यान में लेकर पकड़ा, उसे मुक्ति सहज महिमावन्त आनन्दसुख की खान, **ऐसी उस मुक्ति को अतिशयरूप से प्राप्त करता है।** खास करके (प्राप्त करता है)। उसे मुक्ति होती ही है; दूसरा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे गति-वति नहीं होती। मोक्ष के मार्ग से तो मोक्ष ही मिलता है। यह मार्ग है, इस मार्ग से जाए तो वहाँ मोक्ष आवे। मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप वह तो है। उसका ध्यान करने से पर्याय में मुक्ति प्रगट होती है। आहाहा! यह उसकी मोक्ष की क्रिया, मोक्षमार्ग की यह क्रिया। इस क्रिया की सूझ नहीं पड़ती। एक बार यात्रा कर आओ। चलो, अषाढ़ शुक्ल चौदस की। पालीताणा। बारह महीने के पाप धूल जाएँगे। फिर वापस नया पाप बाँधने का। आहाहा! धर्म के नाम से अनादि से ठगाया है न। धर्म क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं होती। यह ६७वीं गाथा हुई। ६८ वीं गाथा।

गाथा-६८

बंधणछेदणमारण आकुंचण तह पसारणादीया।
काय-किरिया-णियत्ती णिद्दिट्ठा कायगुत्ति त्ति।।६८।।

बन्धनछेदनमारणाकुञ्चनानि तथा प्रसारणादीनि।
काय-क्रिया-निवृत्तिः निर्दिष्टा काय-गुप्तिरिति।।६८।।

अत्र कायगुप्तिस्वरूपमुक्तम्। कस्यापि नरस्य तस्यान्तरङ्गनिमित्तं कर्म, बन्धनस्य बहिरङ्गहेतुः कस्यापि कायव्यापारः। छेदनस्याप्यन्तरङ्गकारणं कर्मोदयः, बहिरङ्गकारणं प्रमत्तस्य कायक्रिया। मारणस्याप्यन्तरङ्गहेतुरान्तर्यक्षयः, बहिरङ्गकारणं कस्यापि कायविकृतिः। आकुञ्चनप्रसारणादिहेतुः संहरणविसर्पणादिहेतुसमुद्घातः। एतासां कायक्रियाणां निवृत्तिः कायगुप्तिरिति।

मारन, प्रतारण, बन्ध छेदन और आकुञ्चन सभी।
करते सदा परिहार मुनिजन, गुप्ति पालें काय की॥६८॥

गाथार्थ :—[बन्धनछेदनमारणाकुंचनानि] बन्धन, छेदन, मारन (मार डालना), आकुंचन (संकोचना) [तथा] तथा [प्रसारणादीनि] प्रसारण (विस्तारना) इत्यादि [कायक्रियानिवृत्तिः] कायक्रियाओं की निवृत्ति को [कायगुप्तिः इति निर्दिष्टाः] कायगुप्ति कहा है।

टीका : यहाँ कायगुप्ति का स्वरूप कहा है।

किसी पुरुष को बन्धन का अन्तरंग निमित्त कर्म है, बन्धन का बहिरंग हेतु किसी का काय व्यापार है; छेदन का भी अन्तरंग कारण कर्मोदय है, बहिरंग कारण प्रमत्त जीव की कायक्रिया है; मारन का भी अन्तरंग हेतु आन्तरिक (निकट) सम्बन्ध का (आयु का) क्षय है, बहिरंग कारण किसी की कायविकृति है; आकुंचन, प्रसारण आदि का हेतु संकोचविस्तारादिक के हेतुभूत समुद्घात है।—इन कायक्रियाओं की निवृत्ति, वह कायगुप्ति है।

गाथा-६८ पर प्रवचन

यह कायगुप्ति की व्याख्या है। ६८ वीं गाथा।

बंधणछेदणमारण आकुंचण तह पसारणादीया।
काय-किरिया-णियत्ती णिद्दिट्ठा कायगुत्ति त्ति।।६८।।

नीचे हरिगीत—

मारन, प्रतारण, बन्ध छेदन और आकुंचन सभी।
करते सदा परिहार मुनिजन, गुप्ति पालें काय की॥६८॥

यह अन्तरंग कारण आया, भाई! **यहाँ कायगुप्ति का स्वरूप कहा है।** यह अन्तरंग कारण।

मुमुक्षु : निमित्त को अन्तरंग कारण कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो दूसरी बात है।

टीका : किसी पुरुष को बन्धन का अन्तरंग निमित्त कर्म है,... उसे कोई बाँधे, परन्तु उस बाँधने में अन्तरंग कारण तो उसका कर्म है। उसे कर्म है, इसलिए उसे कोई बाँधता है। अन्तरंग कारण कर्म है। समझ में आया? **बन्धन का बहिरंग हेतु किसी का काय व्यापार है;...** बाँधे न, इसलिए काया का व्यापार, वह बाहर का निमित्त है। समझ में आया? **किसी पुरुष को बन्धन का अन्तरंग निमित्त...** उसे बाँधे, कोई वृक्ष के साथ बाँधे, डोरी से बाँधे, पैर बाँधे, लोहे के सरिये से बाँधे परन्तु उस बाँधने में मूल कारण तो असाता का कर्म अन्दर है, वह वास्तविक निमित्त है। बाहर में काय का व्यापार दूसरे का बाँधने का।

छेदन का भी अन्तरंग कारण कर्मोदय है,... कोई छेदे, शरीर के टुकड़े करे, कान काटे, नाक काटे। अन्तरंग कारण तो कर्मोदय है... वीरजीभाई बस में थे। उसमें लुटेरे आये थे। 'ढसा' के पास। वीरजीभाई अन्दर थे। सबको नीचे उतारा, उसमें जो बस का ड्राईवर था, उसका नाक काट दिया। वीरजीभाई सबको कहे, मुख उस ओर रखो, इसलिए वापस अपने को इस ओर भागना है न। मुख सबका उस ओर रखाया। वीरजीभाई कहे, इसका

बेचारे का नाक कट गया। डाल दिया है तो लाओ न, खोजें। परन्तु वह नाक भी साथ में ले गया। वीरजीभाई कहे मैं भी साथ में था। सबको उस ओर उतार डालो। भाई! हमारे पास पैसा होवे तो ले लो। वह नहीं लिया। उसके साथ वैर था, इसलिए उसका नाक काटा। अन्तरंग हेतु तो उसका असाता का उदय है। निमित्त (है)।

बाह्य छेदने का **बहिरंग कारण प्रमत्त जीव की कायक्रिया है;...** भाषा देखो! कोई जीव भी छेदा जाए। प्रमत्त मुनि चलते हों, उनकी कायक्रिया। उन्हें पाप लगता है, यह प्रश्न अभी नहीं है। यहाँ तो उसे निमित्त कौन? प्रमत्त जीव हो वहाँ तक... चलता हो प्रमत्त में चलते हैं न? अप्रमत्त में तो स्थिर होते हैं। इसलिए पहले गुणस्थान तो प्रमत्त क्रिया होती है, उसके छेदन में काय का व्यापार निमित्त होता है। ....**मारन का भी अन्तरंग हेतु आन्तरिक (निकट) सम्बन्ध का (आयु का)...** है। मारण का अन्तरंग हेतु अन्दर आयुष्य है। आयुष्य पूरा हुआ तो मरता है। बाहर में कोई मार सके, ऐसा है नहीं। आहाहा!

बहिरंग कारण किसी की कायविकृति है;... काया का व्यापार निमित्त होता है और वह मर जाता है। आयुष्य पूरा हो, वह अन्तरंग कारण, यह बाह्य निमित्त। **आकुंचन, प्रसारण आदि का हेतु संकोचविस्तारादिक के हेतुभूत समुद्घात है।** समुद्घात होता है न? ये प्रदेश बाहर निकलें। **इन कायक्रियाओं की निवृत्ति, वह कायगुप्ति है।** तीनों से निवृत्त होना और अन्तर आत्मा के ध्यान में जाना, इसका नाम कायगुप्ति कहने में आती है। पहले समझे तो सही कि यह कायगुप्ति किसे कहना? कर सके, न कर सके—यह प्रश्न बाद में, परन्तु काया का व्यापार-विकल्प जो है, उसे छोड़ना और अन्तर के आत्मा के आनन्द के ध्यान में आना, उसे कायगुप्ति कहा जाता है। आहाहा!

श्लोक-९३

अब ६८ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(अनुष्टुप्)

मुक्त्वा कायविकारं यः शुद्धात्मानं मुहुर्मुहुः।
सम्भावयति तस्यैव सफलं जन्म सन्सृतौ।।९३।।

(दोहा)

तजकर काय विकार जो आत्म भावना भाय।
पुनः पुनः ध्यावे उसे जन्म सफल हो जाए॥ ९३॥

[श्लोकार्थः] कायविकार को छोड़कर, जो पुनः पुनः शुद्धात्मा की सम्भावना (सम्यक् भावना) करता है, उसी का जन्म संसार में सफल है।

श्लोक-९३ पर प्रवचन

अब ६८ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

मुक्त्वा कायविकारं यः शुद्धात्मानं मुहुर्मुहुः।
सम्भावयति तस्यैव सफलं जन्म सन्सृतौ।।९३।।

श्लोकार्थ : कायविकार को छोड़कर,... कायविकार को छोड़कर, **जो पुनः पुनः शुद्धात्मा की सम्भावना (सम्यक् भावना) करता है,...** लो, आहाहा! शुद्ध प्रभु चैतन्य आनन्दमूर्ति की भावना करता है। उसमें एकाग्र होता है, **उसी का जन्म संसार में सफल है।** बाकी सबके जन्म (निरर्थक हैं)। जन्मे, वे निरर्थक मरेंगे और वापस जन्मेंगे। आहाहा! **कायविकार को छोड़कर, जो पुनः पुनः शुद्धात्मा की सम्भावना (सम्यक् भावना)...** ऐसा। अर्थात् चैतन्यवस्तु भगवान आत्मा की अन्तर की बराबर एकाग्रता

(हो) उसे सम्भावना-भावना कहने में आता है। **उसी का जन्म संसार में सफल है।** जन्मकर फिर से न जन्मना, ऐसा उसने किया। कायागुप्ति है न? शरीर नहीं मिले, ऐसा कहते हैं। उसे जन्म ही नहीं होगा। आहाहा!

अन्तर वस्तु भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप का जिसने ध्यान (किया), वर्तमान ध्यान की दशा में उसे जिसने विषय बनाया, उसे जन्म कैसा? कहते हैं। उसका मिला हुआ जन्म सफल है। फिर से काया नहीं मिलेगी। आहाहा! **उसी का जन्म संसार में सफल है।** कायागुप्ति में यह डाला है, लो! अब यह मन-वचनगुप्ति की-निश्चय की बात करते हैं। पहले व्यवहार की बात थी। मन-वचनगुप्ति की, व्यवहार की बात थी। अब निश्चय की बात करते हैं। ६९ गाथा।

गाथा-६९

जा रायादिणियत्ती मणस्स जाणीहि तं मणोगुत्ती।
अलियादि णियत्तिं वा मोणं वा होइ वइगुत्ती।।६९।।

या रागादिनिवृत्तिर्मनसो जानीहि तां मनोगुप्तिम्।
अलीकादि-निवृत्तिर्वा मौनं वा भवति वाग्गुप्तिः।।६९।।

निश्चयनयेन मनोवाग्गुप्तिसूचनेयम्। सकलमोहरागद्वेषाभावादखण्डाद्वैतपरमचिद्रूपे सम्यगवस्थितिरेव निश्चयमनोगुप्तिः। हे शिष्य त्वं तावदचलितां मनोगुप्तिमिति जानीहि। निखिलानृतभाषापरिहृतिर्वा मौनव्रतं च। मूर्तद्रव्यस्य चेतनाभावाद् अमूर्तद्रव्यस्येन्द्रियज्ञानागोचरत्वादुभयत्र वाक्प्रवृत्तिर्न भवति। इति निश्चयवाग्गुप्तिस्वरूपमुक्तम्।

हो राग की निवृत्ति मन से नियत मनगुप्ति वही।
होवे असत्य-निवृत्ति अथवा मौन वच गुप्ति कही॥ ६९॥

गाथार्थ :— [मनसः] मन में से [या] जो [रागादिनिवृत्तिः] रागादि की निवृत्ति [ताम्] उसे [मनोगुप्तिम्] मनोगुप्ति [जानीहि] जान। [अलीकादिनिवृत्तिः] असत्यादि की निवृत्ति [वा] अथवा [मौनं वा] मौन, [वाग्गुप्तिः भवति] वह वचनगुप्ति है।

टीका :— यह, निश्चयनय से मनोगुप्ति और वचनगुप्ति की सूचना है।

सकल मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण अखण्ड अद्वैत परमचिद्रूप में सम्यक्रूप से अवस्थित रहना ही निश्चयमनोगुप्ति है। हे शिष्य! तू उसे वास्तव में अचलित मनोगुप्ति जान।

समस्त असत्य भाषा का परिहार अथवा मौनव्रत, सो वचनगुप्ति है। मूर्तद्रव्य को चेतना का अभाव होने के कारण और अमूर्तद्रव्य इन्द्रियज्ञान से अगोचर होने के कारण दोनों के प्रति वचनप्रवृत्ति नहीं होती। इस प्रकार निश्चयवचनगुप्ति का स्वरूप कहा गया।

गाथा-६९ पर प्रवचन

जा रायादिणियत्ती मणस्स जाणीहि तं मणोगुत्ती।
अलियादि णियत्तिं वा मोणं वा होइ वइगुत्ती।।६९।।

हो राग की निवृत्ति मन से नियत मनगुप्ति वही।
होवे असत्य-निवृत्ति अथवा मौन वच गुप्ति कही॥ ६९॥

दो प्रकार। **टीका : यह, निश्चयनय से...** अर्थात् सच्ची दृष्टि से। **मनोगुप्ति और वचनगुप्ति की सूचना है।** सच्ची मनोगुप्ति और सच्ची वचनगुप्ति की व्याख्या है। वह व्यवहार थी, सच्ची नहीं थी; व्यवहार था, विकल्प था।

मुमुक्षु : इस अधिकार में ही निश्चय दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ ही दिया है। आहाहा! निश्चय के बिना व्यवहार कैसा? ऐसा सिद्ध करते हैं। पहले व्यवहार की बात की थी, पश्चात् निश्चय की। विकल्प किया अशुभ से छूटना और शुभ में आना, यह व्यवहार मनोगुप्ति है। यहाँ से छूटकर स्वरूप में आना, यह निश्चयगुप्ति है। आहाहा! **यह, निश्चयनय से मनोगुप्ति और वचनगुप्ति की सूचना है।**

सकल मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण अखण्ड अद्वैत परमचिद्रूप में सम्यक्रूप से अवस्थित रहना ही निश्चयमनोगुप्ति है। लो, पहले में ऐसा आया था कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, शान्ति की भूमिका में अशुभ से हटकर शुभ में आना, यह व्यवहार मनोगुप्ति है। यहाँ तो शुभ और अशुभ दोनों विकल्प से हटकर अन्दर में जाना। देखो! **सकल मोह-राग-द्वेष के अभाव...** उसमें राग था। व्यवहार मनोगुप्ति में धर्मी को भी शुभराग था। यह तो **सकल मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण...** जिसने मोह अर्थात् मिथ्यात्वभाव छोड़ा है और राग तथा द्वेष का विकल्प छोड़ा है।

अखण्ड अद्वैत परमचिद्रूप में... लो! भगवान आत्मा अखण्ड आत्मा है, अद्वैत है। जिसमें दो भेद ही नहीं। लो, यह अद्वैत आत्मा आया। सब होकर आत्मा एक, ऐसा नहीं। जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं, ऐसा कहते हैं। अखण्ड है और द्वैत नहीं। अद्वैत है, एक स्वरूप है, परमचिद्रूप-परमज्ञानरूप प्रभु। ज्ञानस्वभावरूप परम ज्ञानस्वभावरूप। **सम्यक्रूप**

से अवस्थित रहना... यथार्थरूप से अन्तर में अखण्ड चिद्रूप में स्थिर रहना, **वही निश्चयमनोगुप्ति है।** लो, इसका नाम धर्म है। समझ में आया? सच्ची मनोगुप्ति इसका नाम है। तब कोई कहे, यह तो सब केवली की बात है। केवली की कहाँ, यहाँ तो मुनि की बात है।

मुमुक्षु : केवली होने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली होने का उपाय, ऐसा जो मुनिमार्ग, उसकी ऐसी दशा होती है, उसकी बात है। उसे पहले श्रद्धा में तो लेना पड़े न? सच्चा साधुपना कैसा होता है, सच्चा मुनिपना कैसा होता है, यह तो कुछ भान नहीं होता और हो गये साधु। आचार्य भगवन्त... आहाहा! भाई! इसमें तो वस्तु के स्वरूप के भान बिना तो नुकसान है। यह तो तेरे अहित के नाश की बात है। हितपना तो भगवान आत्मा का...

अपना शुद्ध आनन्दस्वभाव अखण्ड अद्वैत परमज्ञानरूप। परमज्ञानरूप। वह तो ज्ञानरूप ही है। जानने के स्वभाव का रूप है। उसमें **सम्यक्रूप से अवस्थित रहना...** स्थिर रहना। **वही निश्चयमनोगुप्ति है। हे शिष्य!... जाणीहि** है सही न? दूसरे पद में। **जाणीहि** है न? इसलिए निकाला। **हे शिष्य!...**

यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं न? **मणस्स जाणीहि तं मणोगुत्ती।** आहाहा! इसे तो जान कि इसका नाम मनोगुप्ति कहलाता है। वाणी नहीं, मन का विकल्प नहीं और अन्तर में अखण्ड आनन्द अभेद चिद्रूप में लीनता है, उसे यहाँ सच्ची मनोगुप्ति कहा जाता है।

हे शिष्य! तू उसे वास्तव में अचलित मनोगुप्ति जान। ऐसा। **जाणीहि** था न, उसमें से निकाला। **जाणीहि** तो यह किसी को कहते हैं या नहीं? इसका अर्थ हुआ कि कुन्दकुन्दाचार्य शिष्य को कहते हैं, सन्तों को कहते हैं। **तू उसे वास्तव में अचलित...** अन्दर आत्मा के आनन्द में स्थिर होना, उसे मन का शुभविकल्प भी नहीं। उसे **अचलित मनोगुप्ति जान।** और वही धर्म और वही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! रूखा लगे, कोई वार्ता हो, कथा हो तो मन भी भींगे। क्योंकि... ऐसी बात आवे तो मन भींगे। भींगे न? (यह तो) रूखी बात लगे।

अन्दर वीतराग मूर्ति भगवान में राग नहीं है, ऐसा चैतन्यस्वरूप का विकल्प

छोड़कर ध्यान करे, उसका नाम मनोगुप्ति कहने में आता है। आहाहा! कभी सुना नहीं होगा, विचार में लिया नहीं होगा, प्रयोग तो किया नहीं होगा। मार्ग बहुत अलौकिक है। वीतरागमार्ग परमेश्वर तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग कोई दूसरा प्रकार है। अभी सब गड़बड़ बहुत चलती है। बाहर में सर्वत्र धर्म मना लिया गया है। आहाहा! बापू! यह तो तेरा काल जाता है, प्रभु! यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

परम अद्वैत अखण्ड चिद्रूप में अन्दर में स्थिति करना, अन्दर में आसन लगा देना, उसे हे शिष्य! तू मन की गुप्ति की, ऐसा तू जान। देखो! निश्चय में ऐसा आया। इसका ज्ञान... मनोगुप्ति इसे कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अब ऐसा सब धन्धा कब करना? कमाना कब?

मुमुक्षु : यह एक ही कमाई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कुछ नहीं वहाँ, सुन न! सब पाप के हैरान के रास्ते हैं। पुण्य और पाप दोनों पाप है। उनके रास्ते जाने से चार गति के दुःख हैं। यहाँ तो मोक्ष के मार्ग की व्याख्या है न? यह मन की बात की। निश्चयमनोगुप्ति की बात की, सच्ची मनोगुप्ति की बात की। अब सच्ची असत्य वाणी की बात करते हैं।

समस्त असत्य भाषा का परिहार... एक बात। **समस्त असत्य भाषा का परिहार अथवा मौनव्रत, सो वचनगुप्ति है। मूर्तद्रव्य को चेतना का अभाव होने के कारण...** लो, मूर्तद्रव्य को चेतना का भाषा में अभाव है। **और अमूर्तद्रव्य इन्द्रियज्ञान से अगोचर होने के कारण दोनों के प्रति वचनप्रवृत्ति नहीं होती।** यहाँ समाधिशतक की शैली ली है। कहते हैं कि मैं किससे बोलूँ? भाषा तो जड़ है। उसमें-इस जड़ में तो चेतना का अभाव है। आहाहा! वाणी में आत्मा नहीं है। चेतना का अभाव वाणी में है अर्थात् जड़ वाणी में चेतना का अभाव होने के कारण **अमूर्तद्रव्य इन्द्रियज्ञान से अगोचर होने के कारण...** यह आत्मा है, वह अमूर्त है। इन्द्रियज्ञान के अगोचर है। किसके साथ मैं बात करूँ, ऐसा कहते हैं। वचन गोपन की पद्धति है। यहाँ तो (ऐसा कहे) उपदेश देने से लाभ होता है। लोग धर्म समझें, उसका लाभ मिलता है। यह बात मिथ्या है, कहते हैं। समझ में आया? उपदेश में लाभ मिलता है न? दो-दो घण्टे, तीन-तीन घण्टे सवेरे समझाना। कुछ दे या नहीं? दसवाँ भाग नहीं मिलता होगा? इन गरासिया को मिलता है।

मुमुक्षु : दरबार को मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलता है। गरासिया को कहे कि हमारी जमीन में धर्म हो, उसका दसवाँ भाग हम देंगे। यहाँ तब हुआ था न? जब प्रवचन हाल का खातमुहूर्त हुआ, तब एक भाई थे, गुजर गये। केशूभाई के भाई (थे) वह कहे, इन गरासिया की जमीन में धर्म होता है तो दसवाँ भाग मिलेगा। यह जमीन तुम्हारी कहाँ रही अब? परन्तु तुम्हारी हो तो भी करनेवाले के परिणाम प्रमाण उसे भाव होते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : जमीन-जमीन की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह कहे न भाई! एक मन्दिर बनाओ। उसमें जो कुछ धर्मध्यान होगा, उस मन्दिर बनानेवाले को लाभ होगा। धूल में भी नहीं होगा, सुन न! कैसे होगा यह।

मुमुक्षु : अब अहमदाबाद का मन्दिर हो गया, दिक्कत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी बहुत बाकी है। ऐसे के ऐसे यह सब अन्यत्र भटका करे और प्रमुख रूप से सामने नाम आवे। अन्दर कुछ काम करे नहीं। ऐई! तीन-तीन महीने मुम्बई भटका करे। ऐई! कितना काम है? एक लाख रुपये का दरवाजा बनाना है, अन्दर काम बहुत है। अभी जा आये हैं न दो महीने। पहली बात... फिर सब लोग बात करे न? तब तुम नहीं थे। कहे यहाँ बहुत काम करना बाकी है परन्तु कोई ध्यान नहीं देता। लड़के की लड़की का विवाह करना हो तो वहाँ महीना, दो महीना रुकता है। कोई ऐसी बातें करे, डॉक्टर!

मुमुक्षु : न करे तो भी करने बराबर ही है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़की के विवाह में पाँच-छह लाख खर्च किये। न्यालभाई और इनके पिता ने कहा, अहमदाबाद के लिए तुम्हें पचास हजार-लाख कुछ देना है या नहीं? परन्तु यह मानता नहीं।

मुमुक्षु : जिसे वास्तव में धर्म समझना हो, उसे पैसा खर्च करना चाहिए न, मुझे किसका कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं? मलूपचन्दभाई! ऐसा कहे तुम्हें करना है, हमें

कहाँ करना है ? इतना सब पैसा उसके पास न हो तो कहाँ से दे ? आहाहा ! कौन पैसा दे और ले ? वह तो पैसा जहाँ जानेवाला हो, वहाँ जाता है। आहाहा ! देनेवाला दे, इसलिए प्रयोग करे ? वह तो जड़ के रजकण जिस जगह लगने हैं-खर्च होने हैं, वहाँ वे खर्च होंगे। कौन खर्च कर सकता है ? आहाहा ! ऐसी बात है।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा इन्द्रिय के अगम्य और इस जड़-वाणी में चैतन्य नहीं। **दोनों के प्रति वचनप्रवृत्ति नहीं होती।** जाओ। **इस प्रकार निश्चयवचनगुप्ति का स्वरूप कहा गया।** लो ! वाणी में आत्मा नहीं, आत्मा इन्द्रिय से ज्ञात नहीं होता। किसके साथ बात करना ? वचन को गोपना, ऐसा कहते हैं। विकल्प नहीं करना, ऐसा। वचन तो... विकल्प... वाणी में आत्मा नहीं है, वहाँ विकल्प क्या करे और आत्मा इन्द्रिय से गम्य नहीं, तो मैं किससे बात करूँ ?

मुमुक्षु : वाणी सुनना या नहीं सुनना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बातें हैं। अगम्यगम्य की बातें हैं। सुनने में आवे, परन्तु वह शुभराग है। सुनने में है, वह तो शुभराग है। उसे कोई राग से ज्ञान नहीं होता। सुनने से नहीं होता। ऐसी गजब बात, भाई ! यह तो वीतरागमार्ग ऐसा है। अन्तर के आत्मा के ज्ञानस्वरूप का स्पर्श करने से ज्ञान होता है। उसे छूने से, अनुभव से ज्ञान होता है, ऐसी बात है।

श्लोक-९४

अब ६९ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(शार्दूलविक्रीडित)

शस्ताशस्तमनोवचस्समुदयं त्यक्त्वात्मनिष्ठापरः,
शुद्धाशुद्धनयातिरिक्तमनघं चिन्मात्रचिन्तामणिम् ।
प्राप्यानन्तचतुष्टयात्मकतया सार्धं स्थितां सर्वदा,
जीवन्मुक्तिमुपैति योगितिलकः पापाटवीपावकः ।।९४।।

(वीरछन्द)

जो प्रशस्त अप्रशस्त वचन-मन के समूह का करता त्याग।
आत्मनिष्ठ रहता अरु शुद्धाशुद्ध नय रहित हो निष्पाप॥
चिन्तामणि चिन्मात्र प्राप्त कर सदा अनन्त चतुष्टय युक्त।
पापारण्य-दहन सम योगितिलक होता है जीवनमुक्त॥९४॥

[श्लोकार्थः—] पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान ऐसा योगितिलक (मुनिशिरोमणि) प्रशस्त-अप्रशस्त, मन-वाणी के समुदाय को छोड़कर आत्मनिष्ठा में परायण रहता हुआ, शुद्धनय और अशुद्धनय से रहित ऐसे अनघ (निर्दोष) चैतन्यमात्र चिन्तामणि को प्राप्त करके, अनन्तचतुष्टयात्मकपने के साथ सर्वदा स्थित ऐसी जीवनमुक्ति को प्राप्त करता है।

श्लोक-९४ पर प्रवचन

अब ६९ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

शस्ताशस्तमनोवचस्समुदयं त्यक्त्वात्मनिष्ठापरः,
शुद्धाशुद्धनयातिरिक्तमनघं चिन्मात्रचिन्तामणिम्।
प्राप्यानन्तचतुष्टयात्मकतया सार्धं स्थितां सर्वदा,
जीवन्मुक्तिमुपैति योगितिलकः पापाटवीपावकः।।९४।।

मुनिपना कैसा होता है ? योगी में तिलक। आहाहा! **पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान...** हैं। मुनि तो उन्हें कहते हैं कि पुण्य और पाप के विकल्प को जलाने में समर्थ है। आहाहा! पाप अर्थात् पुण्य और पाप दोनों, हों! **अग्नि समान ऐसा योगितिलक...** आहाहा! **प्रशस्त-अप्रशस्त, मन-वाणी के समुदाय को छोड़कर...** देखो! शुभ और अशुभ, मन का व्यापार और वाणी का व्यापार छोड़कर। मन सम्बन्धी और वाणी सम्बन्धी वह शुभविकल्प भी छोड़कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

पापरूपी अटवी को... बड़ा वन। पुण्य-पाप के संकल्प-विकल्प के जाल, वह बड़ी वन अग्नि है। उसे जलाने में मुनि अग्नि है। ऐसा कि वह तो बड़ी अटवी है। ओहो! स्वरूप में आनन्द में रहनेवाले, अतीन्द्रिय आनन्द में रहनेवाले, ऐसे मुनि पुण्य-पाप के वन

को जलाकर राख करते हैं। **(मुनिशिरोमणि)...** है न? तिलक। योगी में भी शिरोमणि। **प्रशस्त-अप्रशस्त, मन-वाणी के समुदाय को छोड़कर आत्मनिष्ठा में परायण रहता हुआ,...** भाषा देखो! बदलकर व्यवहारचारित्र में भी यह अधिकार लिया। मुनियों की पद्धति ही सन्तों की अलग बात है।

आत्मनिष्ठा में परायण... शुद्धचैतन्य आनन्दस्वभाव ऐसे आत्मा में तत्पर हैं। मुनि तो उसमें तत्पर हैं। आहाहा! **शुद्धनय और अशुद्धनय से रहित ऐसे अनघ (निर्दोष) चैतन्यमात्र चिन्तामणि को प्राप्त करके,...** शुद्धनय और अशुद्धनय से रहित। शुद्धनय अर्थात् विकल्प। मैं शुद्ध आनन्द हूँ, ऐसा विकल्प और अशुद्धराग की पर्याय स्वभाव में है नहीं। दोनों से रहित। **शुद्धनय और अशुद्धनय... के विकल्प से रहित ऐसे अनघ (निर्दोष)...** लो! अघ अर्थात् पुण्य और पाप दोनों। उनसे अनघ-निर्दोष **चैतन्यमात्र चिन्तामणि को प्राप्त करके,...** चैतन्यस्वरूप भगवान चिन्तामणि रत्न आत्मा है। आहाहा! उसे प्राप्त करके। वह चिन्तामणि है। जितना उसमें एकाग्र हो, उतनी उसमें शान्ति और आनन्द मिले, ऐसा चिन्तामणिरत्न भगवान है। उसे पामररूप से माना है। इसने माना है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, उल्लसित होकर उनमें रुका है, उसे आत्मा के चिन्तामणिरत्न की कीमत नहीं है।

अनन्तचतुष्टयात्मकपने के साथ... सार्धं है न, सार्ध? उसमें भी सार्ध है न? १५वीं गाथा में। परिणति के साथ सार्ध, वह पर्याय है न अन्दर? कारणपर्याय। वहाँ भी सार्ध है। **अनन्तचतुष्टयात्मकपने के साथ सर्वदा स्थित...** मुक्ति-मुक्ति। जो आत्मा में परायण है, उसे ऐसी दशा प्राप्त होती है। **अनन्तचतुष्टयात्मकपने के साथ सर्वदा स्थित ऐसी जीवनमुक्ति को प्राप्त करता है।** जीते जी मुक्ति हो गया। राग से, विकल्प से, वाणी से (मुक्त हो गया)। जिसे आत्मा के स्वभाव का ध्यान है, उस ध्यानी को ऐसी दशा प्रगट होती है अर्थात् मुक्ति मिलती है, मोक्ष का मार्ग मिलता है, उसका फल मोक्ष। इसमें दोनों बातें हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)